शोध मंथन Vol. XI No.II Apr.-June. 2020 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 7.760 (SJIF)

पुस्तक समीक्षा

''सेवेन डिकेड्स ऑफ इंडिपेंडेंट इंडिया''–'आइडियाज एंड रिफ्लेक्शंस'

अनुज कुमार सिंह
शोध–छात्र, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय
जयपुर, राजस्थान
Email: sanuj1456@gmail.com

सारांश

जैसा कि पहले यही स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रस्तुत पुस्तक में संपादकों ने लेखों का कोई विषयक वर्गीकरण नहीं किया है लेकिन यहां लेखों का सारांश उपलब्ध कर पाने पाने के लिए उन्हें मोटे तौर पर चार भागों में बांट लिया जा रहा है पहले में विदेश नीति और महाशक्ति बनने के लक्ष्य पर चर्चा को एक साथ रखते हैं फिर आर्थिक विषयों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से केंद्रीय विषय जैसे– उद्योग, कृषि, योजना पद्धति, भूमि रोजगार, कारपोरेट शासन व कर नीति व विकास को एक साथ रखते हैं उसके बाद शिक्षा, स्वास्थ्य, मीडिया, गैर सरकारी संगठन, सिविल सेवा में सुधार और जातीय अस्मिता के प्रश्नों पर विचार करेंगे ऐसी ही सिलसिलेवार तरीकों से आगे पूर्वोत्तर में अशांति के उदाहरण– पिछले 5 वर्षों में नरेंद्र मोदी सरकार की विदेश नीति अपने अग्र सक्रिय चरित्र के कारण विश्लेषण के हवाले सुर्खियों में है कई विशेषज्ञ मोदी की दक्षता का लोहा मान चुके हैं और उनके कार्यकाल में बहुत पहले ही विदेश नीति में इस नई हलचल को 'मोदी डॉक्ट्रीन' का का नाम दिया जा चुका है उसी आलोक में इस पुस्तक का पहला आलेख बाह्य सुरक्षा की चुनौतियों को सामने रखकर शिवशंकर मेनन ने लिखा है। मेनन ने स्पष्ट किया है कि आज भारत अतीत की तुलना में अपनी सुरक्षा को लेकर किसी भी अस्तित्व पर खतरे की स्थिति में नहीं है। साथ ही बाह्य सुरक्षा को लेकर उभरने वाली चुनौतियों की रोकथाम करने के लिए आज हमने अपनी क्षमता का विकास बेहतर तरीके से कर लिया है लेकिन वे इस तथ्य से इनकार नहीं करते कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में हालिया घटनाक्रमों ने स्थिति को थोड़ा मुश्किल बना दिया है बाह्य सुरक्षा पर बड़े आत्मविष्वास पर भी विचार करते रहने की आवश्यकता है जाहिर है मेनन का इशारा पाकिस्तान के साथ बनते और बिगड़ते संबंधों की ओर है वह बाह्य सुरक्षा के साथ आंतरिक सुरक्षा का प्रश्न भी जोड़ते हैं जिनमें से कइयों का संबंध बाह्य कारको से ही है। यहां कश्मीर, लेफ्टविंग, उग्रवाद और पूर्वोत्तर में अशांति के उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसी तर्ज पर डा0 सुब्बाराव का लेख वैश्वीकरण के आलोक में भारत की स्थिति का निरीक्षण करता है। सुब्बाराव का प्रश्न है कि भारत वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को कम करके अपने लिये लाभ में वृद्धि कैसे कर सकता है। यह प्रश्न कमोबेश विदेश नीति से ही जुड़ा हुआ है जहां विभिन्न व्यापार सम्बन्धों, बहुराष्ट्रीय समझौतों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की राजनीति में अग्रसर होकर भारत अपने लिये अपने अनुरूप नए मार्ग बना सकता है। इसी

तर्ज पर सुमित गांगुली ने अपने लेख में पूछा है कि क्या भारत कभी महाशक्ति बन पायेगा? दूसरी ओर ध्रुवशंकर का लेख यह तर्क करता है कि कैसे ''भारत एक एशियाई महाशक्ति बनकर उभर रहा है। कार्यनीति स्तर पर इन दावों की सुध टनटाई मांग के लेख में ली गयी है जहॉ उन्होने भारत और आसियान के संबन्धों को पिछले सात दशकों में बदलते हुए देखने का प्रयास किया है। अगर भारत एक एशियाई महाशक्ति बनकर उभर रहा है तो इसकी पड़ताल केवल आशियान के परिप्रेक्ष्य में नही, दक्षिण एशिया के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए थी। नरेंद्र मोदी सरकार की पड़ोसी पहले की नीति और फिर उसकी सफलता या विफलता का कोई सर्वेक्षण यहॉ नही किया गया है।

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'सेवेन डिकेड्स ऑफ इंडिपेंडेंट इंडिया आइडियाज एंड रिफ्लेक्शंस है। इस पुस्तक का संपादन दो लेखक विनोद राय व अमितेंदू पालित ने किया है जिसका प्रकाशन पेंगुइन पब्लिकेशन दिल्ली द्वारा किया गया है। इस पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 2018 में हार्ड बाउंड कवर में किया गया है जिसमें कुल पृष्ठों की संख्या 304 है जबकि इस पुस्तक की कुल कीमत 699 रुपए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में सर्वप्रथम दोनों लेखकों विनोद राय और अमितेंदू पालित द्वारा भारत में नीति शासन और संस्थाओं को एक सूत्र में पिरोने वाला परिचय शामिल है। क्या भारतीय लोकतंत्र में जनता की आकांक्षाओं को पूर्ण किया है? क्या भारतीय संस्थानों ने अपना कार्य कुशलता से किया है? क्या सरकारी नीतियों से व्यक्ति के जीवन स्तर और उसकी गुणवत्ता में पर्याप्त अंतर लाने में सफलता मिली है? क्या देश की सीमाएं आंतरिक एवं बाह्य रूप से सुरक्षित हैं? क्या भारत एक आर्थिक महाशक्ति बन जाएगा या आने वाले वर्षों में एक अग्रणी सत्य बन सकता है? स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशकों के पश्चात इस तरह के प्रश्नों को उठाया जाना स्वाभाविक ही है। इन विषयों के फेहरिस्त में कुछ सहूलियत से चर्चा हो सकती है जिसमें कई विषय आपत्तिजनक भी हो सकते हैं। स्वतंत्र भारत के सात दशकों पर चर्चा करते हुए जिन 25 लेखों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है उनमें से तीन लेख भारतीय विदेश नीति पर हैं, दो लेख मीडिया को लेकर हैं, भारत महाशक्ति बन सकता है कि नहीं है इस पर लेख दो केंद्रित हैं और फिर चुनाव एवं चुनाव सुधार, जाति प्रश्न, कृषि योजना का अर्थशास्त्र और सरकारी संगठन, भारतीय उद्योग, भूमि, स्वास्थ्य सेवा, रोजगार, उच्च शिक्षा, खेलकूद में अंतर्राष्ट्रीय सफलता सिविल सेवा, उर्जा सिविल सेवा उर्जा लोकतंत्र में भीड़, कौशल विकास, कारपोरेट, सुशासन और कर नीति को लेकर एक आलेख है।

उपर्युक्त सभी आलेख किसी आलोचनात्मक समीक्षा विकास की क्रमिक अवधारणा या समकालीन इतिहास का इतिहास लेखन नहीं है। ये लेख विचार है, चिंतन है, साथ ही कई लेखों में लेखन की अपनी समझ ही केंद्रित है न कि किसी व्यापक अवलोकन का दावा किया गया है। कई आपत्तिजनक विषय छूट गए हैं या जानबूझकर छोड़ दिया गया है। जैसे न्यायपालिका में

सुधार को लेकर कोई अलग से आलेख नहीं है, इसकी चर्चा बहुत संक्षेप में संपादकीय परिचय में की गई है। इसके साथ ही सांप्रदायिकता, अल्पसंख्यक, प्रश्न, आतंकवाद, प्राथमिक शिक्षा, भ्रष्टाचार, संघवाद की समीक्षा, राज्य के अंतर्गत क्षेत्रीय एवं वैचारिक संघर्ष तथा हिंसक आंदोलनों की पृष्ठभूमि, शहरीकरण की समस्या, जलवायु परिवर्तन का सवाल, युवाओं के प्रश्नों आदि विशयों पर कोई बात नहीं हुई है। आश्चर्य है कि महिला प्रश्न पर एक भी आलेख नहीं है।

आलोचनात्मक विश्लेषण के अलावा एक समीक्षा से इतर जब चिंतन को बुनियाद बनाकर भारत के सात दर्शकों पर विचार किया जाएगा तो स्वाभाविक है कि इतिहास के चौहद्दी के बाहर एवं भीतर कुछ विषयों पर अधिक चर्चा होगी और कुछ पर कम। वर्ष 2018 में प्रकाशित इस पुस्तक में केंद्र की नरेंद्र मोदी सरकार की कार्यनीति के भीतर जो विषय अधिक महत्वपूर्ण थे उन पर चर्चा का केंद्रित होना स्वाभाविक है कई बार अतीत एवं वर्तमान के प्रश्नों पर चर्चा का निश्चय समकालीन घटना कर्म ही करते हैं जिस तरह से पुस्तक का एक बड़ा भाग भारतीय विदेश नीति और भारत की महाशक्ति बनने पर केंद्रित है उससे समकालीन घटनाक्रम की महत्ता और स्पष्ट हो जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखों को प्रमुख नौकरशाहों एवं अकादमीकों के सहयोग में सहयोग में लिखा गया है। जहां शिवशंकर मेनन, डी0 सुब्बाराव, एस0 वाई0 कुरैशी, प्रोनब सेन, ए0के0 शिवकुमार, ध्रुव जयशंकर, यू0के0 सिंहा आदि जैसे प्रसिद्ध नौकरशाह मौजूद हैं वहीं दीपांकर गुप्ता, रोविन जेफ्री, अशोक गुलाटी, राजीव कुमार, सुमित गांगुली, सुब्रत के0 मिश्रा, नलिन मेहता आदि जैसे सशक्त अकादमिक लोग भी हैं। हालांकि इस पुस्तक में लिखित सभी लेखों का एक दूसरे से कोई खास संबंध नहीं है तथापि सभी लेख अपने आप में पूर्णता लिए है जिसे पढ़ें व समझे जा सकते हैं। संपादकों ने उन्हें वर्गीकृत करके किसी सूत्र या सिद्धांत में बांधने का प्रयास नहीं किया है। यह एक दृष्टिकोण से अच्छा भी है और बुरा भी। अच्छा इसलिए है कि हर लेख को स्वतंत्र रूप से एक विषय पर किसी प्रसिद्ध विशेषज्ञ के चिंतन के रूप में पढ़ा जा सकता है। बुरा इसलिए है कि विभिन्न विषय एक साथ मिलकर देशहित और राष्ट्रीय सरोवर पर एकाग्र चिंतन करने में कैसी भूमिका निभाते हैं, यह विमर्श इस पुस्तक में नदारद है। जैसे शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं में क्या संबंध होते हैं? भारत को महाशक्ति बनाने में उसकी क्या भूमिका है? बेहतर कर नीति और कारपोरेट शासन से शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं को और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है? शिक्षा के प्रश्न से जातीय अस्मिता का प्रश्न कैसे जुड़ा है? और कैसे इन विषयों पर भारतीय मीडिया संवाद करता है? अब यह सारे विषय जिहद में स्वतंत्र एवं आंशिक रूप से मौजूद हैं लेकिन वे साथ मिलकर एक दूसरे के पूरक नहीं बन पाते।

पुस्तक की महत्ता

पुस्तक विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर एक ही जिहद में अच्छी पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराती है। विनोद राय और अमितेंदू पाल ने परिचय में नीति शासन और संस्थाओं के क्रमिक विकास की एक निराशाजनक तस्वीर खींची है। लेकिन साथ ही जीएसटी जैसे कानून को पास करने के क्रम में राज्य और केंद्र सरकार के मध्य बनी सहमति को सार्थक उदाहरण की तरह प्रस्तुत

किया गया है। दावा है कि लेखकों ने आलोचनात्मक विष्लेशण के अलावा एक बेहतर वस्तुनिष्ठ खाका तैयार किया है। और नीति के स्तर पर आगे सुधार के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसका ब्यौरा भी दिया है।

पुस्तक का संकलन इस ओर भी इशारा करता है कि राष्ट्रहित के विषयों में क्रमिक परिवर्तन आता रहता है। अभी से कुछ दशक पहले ऐसी किसी भी जिहद में सेकुलरवाद की अवधारणा और रोजमर्रा में उनके अनुभवों पर बात करना अनिवार्य जान पड़ता था। लेकिन कोई ताज्जुब नहीं कि इस जिहद में सेकुलरवाद पर कोई सार्थक चर्चा नहीं हुई है। ठीक उसी तरह आर्थिक शक्ति बनने के लिए राजनीतिक और सांस्कृतिक महाशक्ति बनने की होड़ भी प्रकट लक्ष्यों में कमोवेश नवीन है इसी कारण पुस्तक का एक बड़ा हिस्सा इन विषयों की ओर संकेन्द्रित है। पाठकों को इस पुस्तक से यह समझने में सहायता मिलेगी। राष्ट्रहित के विषय कैसे आंतरिक एवं बाह्य चुनौतियों और प्राथमिकताओं में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। यह कभी नियत नहीं होते हैं। जवाहरलाल नेहरू तथा इंदिरा गांधी के कार्यकाल में बनी प्राथमिकताएं आज बदल चुकी हैं। हो सकता है कुछ विषय जैसे– गरीबी उन्मूलन या शिक्षा की मूलभूत संरचना में बदलाव की बात चलती रहे लेकिन वे शासन प्राथमिकताओं में शीर्ष पर नजर नहीं आती।

इस पुस्तक को 2020 में पढ़ते हुए भारत के भविष्य को लेकर कई सवाल खड़े होते हैं, खासकर तब, जब सेकुलर वाद जैसी मूल अवधारणा निरंतर सवालों के घेरे में लाया जा रहा है। पुस्तक के संपादक इन विषयों में नहीं उतरते बल्कि अन्य समकालीन विषयों पर संकेंद्रित रहते हैं। उदाहरण के लिए परिचय में संपादक ने नरेंद्र मोदी सरकार की राजनीतिक लोकप्रियता पर चर्चा की है, कि कैसे प्रधानमंत्री की राजनीतिक स्वीकृति ने विमुद्रीकरण जैसे बड़े फैसले पर निष्चय लेने के लिए उन्हें प्रेरित किया। साथ ही कैसे मुश्किलों का सामना करने के बाद भी देश की जनता ने विमुद्रीकरण का प्रत्यक्ष विरोध नहीं किया है। लेकिन इस तरह के संकेतों को किसी गंभीर विश्लेषण की ओर नहीं ले जाया गया है। यह पुस्तक की आलोचना और महत्ता भी है कि यह कृति वर्तमान में संदर्भित है लेकिन इसमें बृहत निष्कर्षों से बचा गया है।

आर्थिक पक्ष पर अशोक गुलाटी और गायत्री मेनन के लेख कृषि में बेहतर बनाने की ओर उठाए जाने वाले कदमों का खाका खींचते है। कई मायनों में यह लेख इस जिहद के सबसे शोध परक लेख है। लेख में कई जरूरी सवाल उठाए गए हैं, मसलन क्य पंजाब में धान की फसल उगाना वहनीय विकल्प है? लेख का एक महत्वपूर्ण संदेश है कि बिना उत्तम जल प्रबन्धन के कृषि को चिरस्थायी बनाये रखने में मुश्किल आयेगी। इस आलोक में सिंचाई से लेकर जल आपूर्ति तक के विषयों पर विचार करने की आवश्यकता है। फिर राजीव कुमार ने भारतीय उद्योग के विकास का एक व्यौरा दिया है। इसी कड़ी में प्रोनब सेन का योजना की प्रक्रिया पर प्रस्तुत आलेख एक बेहद महत्वपूर्ण पाठ है। आज जब योजना आयोग को निरस्त करके मोदी सरकार ने नीति आयेाग को स्थापित किया और फिर ऐसी संस्थाओं की भूमिका और उनकी कार्यनीति पर चर्चा हो रही है तब ऐसे में योजना की प्रक्रियाओं और उनकी विरोधाभास का सिलसिलेवार ब्यौरा– पढ़ना बेहद रोचक है। संजोय चक्रवर्ती ने भूमि और भूमि सुधार में चली बहसें और उनमें

हुई प्रगति का ब्यौरा दिया है। साथ ही भविष्य में इस परिमित संसाधन को अधिक से अधिक संचयित कर इससे लाभ कैसे लिया जाय इस पर सुझाव दिया गया है।

तीसरी कड़ी में शिक्षा स्वास्थ्य मीडिया सिविल सेवा में सुधार आदि की चर्चा हुई है। स्वास्थ्य सेवाओं का इतिहास पर चर्चा करते हुए अर्थशास्त्री ए0के0 शिवकुमार ने विश्लेषण किया है कि पिछले सात दशकों में स्वास्थ्य सेवा जिस तरह से विकसित होती रही है वह लोगों की जरूरतों को आज भी पूरा क्यों नही कर पायी है।आज जबकि मोदी सरकार ने स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार लाने का प्रयास किया है तो आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं की पूर्णता में विश्लेषण करना जरूरी होगा। शिवकुमार की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि भारत मजबूती से स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करें। आगे मीडिया पर दो महत्वपूर्ण आलेख रोबिन जेफ्री और नलिन मेहता द्वारा लिखे गए है। जेफ्री का आलेख जहां सात दशकों में भारतीय मीडिया के क्रमिक विकास पर दर्षष्टि डालता है वहीं मेहता का लेख वर्तमान संदर्भ में मीडिया को लेकर उभरी पांच चुनौतियों को रेखांकित करता है। एस नारायण ने सिविल सेवा में प्रस्तावित सुधारों का संज्ञान लेते हुए एक लेख प्रस्तुत किया है।

आखिर में लोकतंत्र और जातीय अस्मिता का प्रश्न आता है। इस कड़ी में पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस0वाई0 कुरैशी ने भारतीय चुनावों का उद्भव और वर्तमान की चुनौतियों को देखते हुए उनमें किए जाने वाले सुधारों की जरूरत पर अपनी राय रखी है। सुब्रत मिश्रा ने लोकतंत्र और इसमें बढ़ती गुस्सैल भीड़ की भागीदारी पर विचार किया है। यूँ तो लेाकतांत्रिक राज्य अपनी वैधानिकता के लिये आमजन के समर्थन पर आश्रित है लेकिन नागरिक समाज और लोकतंत्र के मध्य सम्बन्ध एकरेखीय कत्तई नही है। इस प्रश्न को ठीक समय पर उठाया गया है जबकि ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि लोकतांत्रिक सरकारें प्रतिरोध को लेकर ससंकित होने लगी है। भारत में भी सरकार की आलोचना को व्यक्ति और राजनीतिक पार्टी की आलोचना कहने का चलन दिखाई देने लगा है। तो इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या नागरिक समाज का प्रतिरोध और मुद्दों को लेकर उनकी सक्रियता लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत बनाती है या उन्हे कमजोर करती है? जाति के प्रश्न पर प्रसिद्ध समाजशास्त्री दीपांकर गुप्ता ने तर्क किया है कि जाति अब किसी व्यवस्था की तरफ कार्यरत न हो कर विभिन्न अस्मिताओं की तरह सक्रिय है। जाति व्यवस्था के उद्भव से बात की शुरूआत करके गुप्ता बताते है कि स्वतंत्रता के बाद जैसे जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन हुआ उसके परिणाम के रूप में यह व्यवस्था चरमराने लगी। लेकिन एक अस्मिता के रूप में जाति बेहद सक्रिय है और इसी कारण राजनीतिक प्रतिस्पर्धा में यह एक जरूरी कारक है। इसी तरह जातीय अस्मिता का प्रश्न लोकतंत्र से भी जुड़ जाता है। चूँकि पुस्तक में सेकुलर वाद और सांप्रदायिकता को लेकर कोई चर्चा नही है। इसलिये जातीय अस्मिता के साथ धार्मिक अस्मिता पर कुछ नही कहा गया है।

निष्कर्षात्मक आलोचना

इस तरह विभिन्न विषयों पर इस संकलन में कई तथ्यपरक लेख उपलब्ध है जो पिछले सात दशकों में न केवल विषयों के उद्भव श्रमिक विकास और उनके गति का व्यौरा पेश करते

हैं बल्कि भविष्य के लिये किए जाने वाले संभावित सुधारों पर भी सुझाव देते हैं। पुस्तक की आलोचना में इतना कहा जा सकता है कि यहॉ प्रस्तुत आलेखों को अगर संपादक विषयक तौर पर वर्गीकृत करते तो इन विषयों के मध्य होने वाले संवाद को बेहतर समझा जा सकता था। पुस्तक में जिस तरह के विभिन्न आलेख आए हैं ऐसा प्रतीत हो सकता है कि हर आलेख विषय की स्थिति से स्वतंत्र है। लेकिन वास्तव में ऐसा नही है। इन सभी विषयों में आपस में संवाद है और उसे रेखांकित किया जाना चाहिए था।